समय का रास्ता
(कविता संग्रह)
कुन्तल कुमार जैन

Samay Ka Rasta
Poetry by Kuntal Kumar Jain

आवरण शिल्पी
कुन्तलकुमार जैन

प्रकाशक
सन्मति प्रकाशन
१३८ सी, सन्मति कुटीर,
बावड़ी चाल, चन्दावाडी, सी. पी. टैंक,
बम्बई ४००००४

प्रथम संस्करण - १९८६

मूल्य : सजिल्द २५) रु०
पेपर बैक १५) रु०

मुद्रक :
बाबूलाल जैन, फागुल्ल,
महावीर प्रेस,
भेलूपुर, वाराणसी २२१०१०

कविता

धीरे से धीरे सायकल
चलाना है.
समय के रास्ते पर.
और तमाम प्रकार की तेजी के खिलाफ
मोह-भंग की रचना है.

उनके
लिये



यह औद्योगिक व्यवस्था
जिसमें राज्यसत्ता भी आ
जाती है, मनुष्य को ही नहीं
पूरी सृष्टि को निर्जीवता
में पलटने की, या मिट्टी में
मिलाने की बहुआयामी
सफल होती हुई
कोशिश है.

इस व्यवस्था का सामना
जो लोग घर में या बाहर
यहाँ या वहाँ, देश मे या परदेश
में, या इस पृथ्वी के
किसी भी भाग में कर रहे है
एक डरे हुये आदमी की
ये कविताएं
उनके लिए

कविता

समुद्र



तुमने लिखा बड़ी बेटी रोती रहती है और छोटी अखबारों में
पापा के छूटने की खबर ढूंढती है.

तुमने क्यों पूछा ये लोग तुम्हें यातना तो नहीं देते
तो सुनो अंजु !
यहाँ जेल का यह नियम है कि राजी खुशी की खबर के सिवा
कोई बात बाहर नहीं जाने देते.

तुम यह अच्छी तरह जानना कि इनके ऊपर जो व्यवस्था के लोग हैं
वे अपनी अराजकता के सिवाय किसी की अराजकता नही सह सकते हैं

खैर कुछ भी हो, तुम डरना नहीं साहस को घटने देना नही
कैसे भी हो यह घड़ी, अपने को जिंदा बचाये ले जाने की है.

समय का रास्ता

यह समय का रास्ता है जो सफलता नहीं
सत्य खोजकर लाता है,
जिसपर
हार कर भी हम जैसे लोग
अपनी सदी का अकेलापन

भोगते हुए
चलते हैं.

यह अकेले-अकेले
बिना साथ चलना,
बड़ी मँहगी मस्ती है. स्वतंत्रता है
अपने आपको खोजते रहना है.

जिसके लिए
जान तक घिसनी पड़ती है
सामने आती हुई धार पर.

सीधे समझो तो,
अपना वज़न खोना है
फूल बनकर
हवा में उड़ना है. जलना है. बिखरना है. बिछुड़ना है.
और मिलना भी है मिट्टी में
इसका
बाकी कोई उपयोग नहीं है

लेकिन
तुम यह बात नही मानोगे
और मनुष्य मनुष्य के बीच
पुल और मकसदो की
दलाली करोगे फिर
मकसदों के हुक्म बजाते रहोगे.

अंधेरी रात है
और जुल्म के साथ है.
कहीं घाटी है
कही खाई है
कही दलदल है
लेकिन डर जाने जैसी
कोई बात नही है
क्योंकि
लाखों बरस पुरानी यात्रा है मेरी भी.
मैं ही
आता
रहा
हूँ,
बार-बार,
समय के बाहर से
समय में.
दोस्तो !
जब भी तुम,
मनुष्य की छाती पर
पहाड़
रखने आ जाओगे
तब
सामना
फिर होगा.
होगा, और फिर होगा.

जब
वक्त

मुझे मत दिखाओ, जेब में रख दो
अपना सफलता और यह सारा कीर्तिमान.
वक्त, हमेशा साथ नहीं देता है.
कभी-कभी तो हजारों साथ देनेवालों को भी पीछे छोड़ देता है.
और वहीं से चलना शुरू कर देता है जहाँ से, एक अकेला आदमी
अपना सच लेकर चलता रहता है.
भीड़ या जुलूस ही आखिरी निर्णय नहीं होता.
संगठन ही अन्त तक काम नहीं आते हैं
क्योंकि हथकंडे भी, अन्त में आ कर तो टूट ही जाते हैं.
हाथों में भले लगाम रह जाये
रथ
टूट
जाते हैं
और पहिये बिक जाते हैं
खरीदनेवालों के घमंड भी थोथे
और बेचनेवालो की विवशता भी झूठी हो जाती है.
जब
वक्त
सफलता और चीजों को,
तोड़ने
मरोड़ने
लगता है.

जीभ

पहले होंठों से कहा गया
तुम
जीभ के कहने में मत आओ.
बाद में
दाँतो ने
जीभ से कहा,
'तुम अपनी मर्यादा में रहो
अब हम ही तुम्हारे पहरेदार हैं
रक्षा-भार
हम पर हैं.
और देखो ! सेना हमारा शरीर है.
अब हर चीज
पहले हम चख लेंगे
फिर मौसम अनुकूल होने पर
तुम्हें देंगे.
बात नयी भी है
और पुरानी भी है
सिंहासनो से जुड़ी इसकी कहानी है
कि जीभ जब सच के
साथ हो जाती है
तो फिर वही जीभ कड़वा नीम हो जाती है
मुंडी पकड़ कर,
गला दबाकर
बाहर निकालकर

सरे शाम
रास्ते पर
काट दी जाती हैं
या
दाँतों के पीछे
डाल दी जाती है.
माना कि जीभ के पास
टी० वी० न सही,
रेडियो न सही
अखबार न सही
उसके
अपने लोकगीत तो हैं
कबीर के भजन तो हैं
और
असंख्य दंतकथाएँ तो हैं
यह कहेगी
और कहेगी
बिना कहे / बिना कहे
नहीं रहेगी.

बौद्धिक

पत्थर



सब
भीगे बरसात में
पत्थर
सिर्फ
चमके
तुम्हारे शब्दों की तरह.

भोग की
स्वतंत्रता

लोकतंत्र में, जैसी भी हूँ
अभी तो मैं हूँ
और
कहाँ तक हूँ, मैं नहीं जानती
कुछ लोग कहते है
मै बड़ी पुरानी हूँ.
मगर एक के बाद दूसरा खसम पलटती आयी हूँ.
अब, किसी एक को नहीं
बहुत-बहुत लोगों की प्रेयसी हूँ.
किसी भी पँचतारा होटल में सही
नंगी
अर्धनंगी
नाचने की
सार्वजनिक व्यवस्था हूँ.
नाच में
मैंने आपको देखा था और,
आँखो से पुकारा था
और
जब मैंने सबकी आँखें अपने खुले जिस्म से बंद कर दी थी
और मैंने, बैठे हुए तमाम लोगो को,
सपने दिये थे
एक नयी व्यवस्था के
लगातार नयी होती हुई अवस्था के.

रात
एक के बजने बाद
ढल
रही
है.
और घड़ी में नयी तारीख पड़ गयी है.
मगर
एक और रात तो
ठीक ढंग से अभी आरम्भ हुई है
पीओ !
मेरी नग्नता की अध्यक्षता में पीओ.
कहीं ऐसा न हो कि कल
मैं न रहूँ
और आप, लोगों से पूछते फिरें कि वह औरत
कहाँ
है ?
जो
जंघाओं में
तूफान लेकर
नाचती थी.
और जिसकी देह का अपना वैभव था.
मैं ! हाँ जी मैं !
खरीदी हुई ही सही, तुम्हारी स्वतन्त्रता हूँ
रोकना मत, अपने आपको कहीं से.
वैभव तो अभी भरपूर है
मुझे जम के भोग लो. सूर्योदय अभी बहुत दूर है.

बलात्कार

मानवता
न्याय-व्यवस्था
समता
और स्वतन्त्रता

एक ही औरत के चार नाम.

कोई नितम्ब पर फेर रहा हाथ
कोई चूस रहा होठों को
कोई मसल रहा उरोजों को
और
कोई
घोड़ा बनकर दौड़ रहा
उस जगह
जहां से

मनुष्य को जन्म देने की सुविधा है.

स्वतंत्रता के बाद

स्वतन्त्रता
के
बाद
मैं, लगातार ठिगना होकर, इस जगह, उस जगह,
हर जगह,
भँडुए की भूमिका में आ गया हूँ
अपनी दाहिनी हथेली में, रंडीपन और बायें हाथ में
ग्राहक लेकर
यह सच है
कि मेरे भीतर
गिर पड़ा है पेड़
और, जब मैं, समय के अलग-अलग खानों में,
बैठा
होता हूँ
तो मुझे लगता है
कभी मैं, रंडी हूँ और कभी भँडुआ
और कभी ग्राहक.
इस गणतंत्र और सामाजिक मूल्यों की सूनी बस्ती में,
जहाँ,
सभ्यता, परम्परा और नैतिकता
एक और दुनिया द्वारा खरीदी जा चुकी है
वह दुनिया मेरी नहीं है.

तो

एक
दिन
इस सृष्टि के सभी पर्वत, क्रोधित होकर, मनुष्यों पर अपने तमाम पत्थर फेंकने लगे तो ?
एक
दिन
पृथ्वी, अपनी क्षमा छोड़कर, खुद ही अपनी धूल मुट्ठियों में भर भरकर निरंतर फेंकने लगे तो ?
एक
दिन
सारा वृक्ष समाज, फूल फल देने से इनकार करके, कोप से भरके चल चल के, एक
एक मनुष्य को, अपनी डालियों के हाथ बना बनाकर मारने पीटने लगे तो ?
एक
दिन
तीनों अग्नि, अपनी अपनी तमाम लपटों के साथ मनुष्य का पीछा करने लगे तो ?
एक
दिन
हवा, अपनी हल चलन छोड़कर, पूरी मनुष्य जाति के भीतर आना और जाना छोड़ दे तो ?

एक
दिन
घमंड में आकर, पानी अपनी करुणा छोड़कर, भाप बनकर उड़ जाये या
मनुष्य के भीतर मे रहना ही छोड़ दे तो ?

एक दिन
अनाज, सभा भरे, बहस करे, निर्णय करे और धरती में से उगना ही छोड़ दे तो ?
एक दिन
आकाश, तमतमाकर लौट जाये अपने घर, और मनुष्य को जगह देना ही छोड़ दे तो ?
एक दिन
समुद्र, अपनी असंख्य की सेना भेजकर मनुष्य को अपनी गर्भ जेल में रखने लगे तो ?
एक दिन
तमाम पशु और नभचर और कीड़े-मकोड़े मनुष्य को कसाईखानों में भेजकर रक्त उत्सव, रक्त स्नान या रक्तपात या विदेशी मुद्रा के लिए रक्त-निर्यात करने लगें तो ?

शाम



थकना और घर लौटना,

न्यायपूर्ण चेहरे !

अन्यथाय के, न्यायपूर्ण
चेहरे हैं
चुनाव,
है बहुत कठिन;
यहाँ जीना
अब आखिरी नरक है.
और मानो, मरने के बाद,
फिर जन्म होता हो.
तो, समय का अनुभव
कितना बड़ा यातना-शिविर है.
देखो ! मेरी दुर्दशा देखो,
अपने ही निर्णय
खाली पड़े हैं मकानों-से
अपने ही हाथ
पराये हैं हाथों से
और अपने ही पैर
दूसरो की यात्राएँ....
शर्तें
जीने की
जो निर्धारित करता है
वह मेरी स्वतंत्रता
तय करता है.

मेरी दीवार-घड़ी
कैसे चले
यह पॉवरहाउस
तय करता है
मुझे हर रोज
अपनी घड़ी को
पंद्रह मिनिट
आगे धकेलना पड़ता है
अपना सर
नारियल की तरह
फोड़ना पड़ता है—
जहाँ भी
फर्श है, दीवार है, घाट है या कोई भी पत्थर है.
यहाँ जीना
बेजायका है
बरसों से,
फूलों का खिलना,
जैसे
अपराध है
बरसों से
इसीलिए
मेरी साँसों में
दुर्गंध है
बरसों से.

रस्सी और आग

□

सिगरेट की दूकान के पास
एक जलती रस्सी
रहती
है
आग भी, बदली जाती है
लोग भी, बदलते जाते हैं

सामना

सामना !
हरेक जुल्म का करना है,
आहत ही आहत होते जाना है,
राहत उनको,
कभी सम्भव नहीं, जिनको लगातार चलना है
क्योंकि
अन्याय
नयी-नयी आकृतियाँ लेकर आते रहेंगे
यात्रा तो
अक्सर भंग होती है, फिर चलती है
जो लोग
थक जाते हैं
वे
बैठ
जाते
हैं
घने पेड़ की छाया में, या झाड़ी में, या
किसी गुफा में,
अपनी आँख
जिसके पलकों और हृदय के बीच ढँक जाती है
वे लोग
निश्चय
मरते
हैं

और सतत निरन्तर रहते हैं उनके कदमों से,

काट भी दिये जाते हैं
पैरों से
लिपटे हुए
रास्ते.

और अकेला ही चलना पड़ता है वर्षों-वर्षों तक

अँधेरा आता है और साथ में, जंगल चलता है
और पैरों को
ठोकरों की

शिकायत भी नहीं रहती.

क्योंकि
यह जानना ही

बल देता रहता है
कि यात्रा लम्बी है, और बिना राहत चलना ही
चलना है.

सामना !
हरेक जुल्म का करना है.

शोषण



कैसेट की टेप की तरह
कभी इस पहिये पर
कभी उस पहिये पर
बहुत बार
बजा.

बिका
टूटा
फेंक दिया गया.

अधूरापन

जीवन दो हिस्सों में किया, फिर आधा जिया
प्रेम भी आधा किया, नफरत को आधे तक जिया
जो भी सच कहा, पहले उसका आधा किया
साहस था कम, झूठ भी आधे तक जिया
न्याय था थोड़ा दूर, लेकिन फासला आधा ही तय किया
पापी था नहीं पूरा मन, पुण्य को भी धोखा दिया
पूछो तो सही, प्यास थी, न बुझा पायी या हमने ही कम पानी पिया

ब यहाँ तय है

चुप रहना !
सब यहाँ तय है
व्यवस्था में है
आग,
रक्खी हुई पानी में है

यह तपेला भर पानी
पिओ,
या माथे पर उँड़ेल दो
या अपना सड़ा हुआ
अंग धो लो
यह अन्तिम स्थिति है.

साहब !
चीजें
सब ठीक ढंग से रक्खी हुई हैं,
उन्हें उलटने की हिम्मत
मत करो
साहस,
शवयात्राओं में
यहाँ बदल दिये जाते हैं
काल-कोठरी में
रखा हुआ है पूरा इतिहास
तुम पढ़ सकते हो,

समझौतों के आपसी सम्बन्धों को

धीरे धीरे
सब बदल जाता है
कोशिश करके देखो,
क्रोध,
क्षमा में लौट जाता है.

तपते रेगिस्तान में,
चलते-चलते
तुम थक जाओगे,
पानी के लिए
तरस जाओगे
अपने पास
ऊँट रक्खोगे
तो भी
धोखा खा जाओगे

कुन्तल कुमार



जरा
सम्भल के रहना

समय
है,

एक आपरेशन में

हम
जानते हैं

अगर जो नहीं पाये, तो जहर खा के मरेंगे. और जहर खाना, हमारा ही चुनाव होगा.
किसी और का नहीं.
हम जानते हैं, और अच्छी तरह जानते हैं. किस्से क्या हैं ? कहानियाँ क्या हैं ?
दंतकथाओं के अभिप्राय क्या हैं ? हर जगह, और जगह-जगह, दखल क्या है ?
रास्तों की धमक क्या है ?
और हमारी गर्दन पर पड़ा हुआ हाथ क्या है ?

मत पूछो यारो !
दोस्ती क्या है ? दमन क्या है ?
और जनतन्त्र में गोलीबारियाँ क्या हैं ? गिरफ्तारियाँ क्या हैं ?

चरित्र

मैंने यह तय किया था
कि गरीब को और गरीब
और अमीर को और अमीर
नहीं होने दूँगा.
लेकिन मैं
लोभी और बेईमान
दोनों था.
मुझे चार कमीजों से
काम चला लेना था
लेकिन मैं
बारह कमीजें
पहनने लगा.
धपाधप पेट
पिल्पिलाने लगा.
कुर्सी, टेबुल, फ्रिज, फर्नीचर
और एयरकंडीशनर से घिरने लगा
किताबों के आग में रंगने लगा.
मनुष्य को छोड़कर,
चीजों के लिए
छटपटाने लगा
मैं अपनी जेब
पूँजीपति की तिजोरी से
भरने लगा.

मैं
जिस गरीब की बात कर रहा था
वह हर जगह नंगा अधनंगा,
भूखा मरने लगा.
मैं, आगे बढ़ने लगा.
उसकी वस्त्रहीनता की
चर्चा
कपड़े पहने लोगों में करने लगा.

थोड़ा-सा मालदार होने
के बाद,

मैं, बड़ी-बड़ी कम्पनियों के
जूते खरीदने लगा.
मेरे घर के बाहर का मोची
जो बड़े प्रेम से
नाप लेकर,
मेरे जूते बना देता था
उसका लड़का
अपना धंधा छोड़कर,
नौकरी करने लगा.

अब मेरे पैरों का
नाप नहीं रहा
मैं सात या आठ नम्बर का
जूता होने लगा....

मैं
ज्यों ज्यों बेईमान
होता गया.
अधिक से अधिक
बराबरी और न्याय की
बातें करने लगा

मैं फिर आकर्षित हुआ
रिफाइण्ड तेल के
सफेद रंग से और
घाणी के तेल से
नाराज हो गया
तेली और मेरे बीच का
पुल
दस पन्द्रह साल पहले
टूट
गया.

मेरी सरकार बड़ी मस्त थी.
गजब की चंचल नर्तकी थी.
उसने विकास और
भलाई के नाम पर,
फिर समाजवाद के नाम पर,
टैक्सों की एक महान दुनिया
रची,
और जमकर शोषण किया
लोगों को आपस में
अलग-अलग किया
इतना ही नहीं
मोटों का प्रकाश
बखूबी
किया

बैल
और आदमी,
दोनों को
छोटा
किया
और मोटों को ज्यादा से ज्यादा
मोटा और ऊँचा
हो जाने दिया.

लेकिन
मैंने भी,
सरकार को कर देने से इन्कार
नहीं किया.

शायद
मैंने भी
कुछ तय कर लिया था.
गरीब को और गरीब
और
अमीर को और अमीर
होने दिया.

खच्चर

□

कूड़े करकट कचरे के ढेर पर खड़े होकर, खच्चरों का
यह झुण्ड पिछले पैरों से धूल उड़ा रहा है
जिसे वह कभी अपनी बौद्धिकता कहता है
तो कभी प्रगतिशीलता,
कभी आधुनिकता.
दर असल, ये शब्दों में खड़े हुए खच्चर हैं जिन्हें अपने घोड़े होने
का भ्रम है.

इन्होंने गुड़ के लिए, चने के लिए, हरी घास के लिए
तबेलों में रहना स्वीकार किया है. और अपनी-अपनी पीठें
उन ऐयार घुड़सवारों को दे दी हैं. जिन्हें गलो में खड़े
हर आदमी को कुचलते हुए जाना है.

और आगे

कोई भी सफलता तुम्हें देखती जायेगी, जैसे जैसे जाओगे आगे, और आगे
कुआँ या खाई, वे पूछेंगे. जैसे ही जाओगे आगे आगे और आगे
रेशम के धागे में, गाँठ बना बनाकर तुम्ही हो डाले जाओगे
जब भी तुम जाओगे व्यवस्था में आगे, और और, और आगे

न कोई...

न कोई रास्ता
न कोई मोड़,

रह गया खुद से ही
गुणा भाग जोड़,

हर जगह जख्म पर
धर दिये फूल

चीज़ों का शासन

चीज़ों को शोकेशों से खरीदते-खरीदते;
चीज़ों की लगातार संगति करते-करते;
चीज़ों के आसपास
ललचाते,
लपलपाते,
लार टपकाते;
चीज़ों के बीच उठते,
बैठते,
सो जाते और जगते;
चीज़ों पर पड़ी धूल
पोंछते-झाड़ते,
उन्हें एक जगह से दूसरी जगह ले जाते;
अथवा,
उनके लिए स्वजनों से बहस करते,
लड़ते,
झगड़ते
मैं
खुद भी चीज़
हो गया—जैसे कोई टेपरिकार्डर
संयुक्त कर दिया हो
बजते रहने के लिए...
देखो,
अगर हिम्मत हो तो देखो...
यह दुर्घटना, तुम्हारे साथ भी घट चुकी है
और वस्तुएँ
शासन करने लगी हैं मनुष्य-जीवन पर.

इधर कभी आना मत

अमरता की सज़ा, हमें कभी देना मत
हो सके, तो इतना समझना
हम, हुये ही नही.
अपने ही रक्त में उठ उठ कर
खड़े हुये, दौड़े, बहे, टूटे भी
मगर अपने लिये.

दूसरे की भलाई की बात ही उठाना मत
सिर्फ एक अरसे तक, हाँ अरसे तक
समय की नदी में रहे, बहे और
बिखर..........गये..........रेत ....में
नदी होने का नाम हमें मत देना
जलते थे, शाम से आधी आधी रात तक
कभी-कभी पूरी-पूरी रात भर
घरो मे, तहखानों में, झोपड़ियों में
खंडहरो मे, श्मशानो में या शून्यो मे
प्रकाश-स्तम्भ होने का दम्भ हमे देना मत
और सुन
जा अपने रस्ते जा
अपने ही घरों, मे बिना घर रहने वालो को
या अपने को भी सर नही झुकाने वालों को
किसी भी व्यवस्था में रखने की
बात ही उठाना मत, बात ही उठाना मत

लोग सरल हैं

एकता खोजने आते हैं लोग
और सर पर, संस्था, समाज, संगठन या सम्प्रदाय का टोकरा
उठा लाते हैं
एक होने के नाम पर धीरे-धीरे खो दिया जाता है विवेक,
कुछ खेल चलते हैं
और कुछ लोग, अपने अहंकार मजबूत करते हैं.
संस्था, समाज, संगठन या सम्प्रदाय आहिस्ते-से, लोगों के.
मालिक बन जाते हैं
इसे हमेशा एकता के हाथ मजबूत करना कहा जाता है. और व्यक्ति का दिमाग
सफाई से धो दिया जाता है. विचार करने की छूट और समय न मिले, इसलिए निरन्तर रेडीमेड आईडिया
पहनाये जाते हैं.

लोग सरल हैं. नहीं जान पाते अहंकारियों के नकाबपोश इरादे और फंस जाते हैं दलदल में.
बचना. इनसे बचना. ये संगठन, ये समाज, ये संस्था, ये सम्प्रदाय मनुष्य को अपनी सदस्यता के
सिवा कुछ नहीं देते. सदस्यता. जो आदमी को बांधती है. नियम निर्धारित करती है.
स्वतंत्रता को पीछे धकेल देती है.

और,

सदस्यों की आपाधापी मानवीय करुणा का गला घोंट देती है
फेंकती है भाईचारा भाड़ में.

शब्दों में चीजों के कारखाने

बिना तुझे पूछे, बिना मुझे पूछे,
यह सभ्यता
घर-घर में
चीजों का जंगल
और धक्के दे रही है.
ताकि
एक-एक मनुष्य गिरता चला जाये,
आत्म-बल के शिखरों से.
मुड़ जाये
आत्मजय से.
और, दूसरे के भाव का सर्प
उसे डंस जाये.
और यह सब
ऐसे हो रहा है
जैसे
धरती पर
मनुष्य का होना ही
चीजों को
                    खरीदने के लिए हो.
अधिक उत्पादन !
अधिक विज्ञापन !
अधिक से अधिक लोगों का शोषण
और

विदेशी मुद्रा का आकर्षण.
कहाँ जगह है यहाँ ?
समता के लिए
भाईचारे के लिए
स्वतंत्रता के लिए
तेरे और मेरे बीच प्रेम करने के लिए.
कितना मुश्किल हो गया है
अपनी चीख से,
जन्म लेना
तारीखें गिनना,
और अन्त में,
दिन बदल देना
क्योंकि
चीजों ने
शब्दों में भी
अपने-अपने कारखाने,
डाल दिये हैं.

मूल्य



मूल्य,
जितने भी थे
दुह लिये गये

बछड़ों के लिये
सूखे
थन रह गये.

शब्दों में चीजों के कारखाने

बिना तुझे पूछे, बिना मुझे पूछे,
यह सभ्यता
घर-घर में
चीजों का जंगल
और धक्के दे रही है,
ताकि
एक-एक मनुष्य गिरता चला जाये,
आत्म-बल के शिखरों से.
जुड़ जाये
आत्मक्षय से,
और, दूसरे के भाव का सर्प
उसे डँस जाये.
और यह सब
ऐसे हो रहा है
जैसे
धरती पर
मनुष्य का होना ही
चीजों को
खरीदने के लिए हो.
अधिक उत्पादन !
अधिक विज्ञापन !
अधिक से अधिक लोगों का शोषण
और

विदेशी मुद्रा का आकर्षण.
कहाँ जगह है यहाँ ?
समता के लिए
भाईचारे के लिए
स्वतंत्रता के लिए
तेरे और मेरे बीच प्रेम करने के लिए.
कितना मुश्किल हो गया है
अपनी चीख से,
जन्म लेना
तारीखें गिनना,
और अन्त में,
दिन बदल देना
क्योंकि
चीजों ने
शब्दों में भी
अपने-अपने कारखाने,
डाल दिये हैं.

मूल्य

□

मूल्य,
जितने भी थे
दुह लिये गये

बछड़ों के लिये
सूखे
थन रह गये.

समय का ठहरना और बहना

रात तीन बजे हैं, प्लेटफार्म पर रोशनी भरी पड़ी है
तीन दस की ट्रेन घड़घड़ाती जाती है
झींगुरों की झीनी आवाजों में ठहरा सन्नाटा, झटपट खड़ा हुआ
और दौड़ गया जंगल के अन्तरकक्षों तक.
और ज्यों ही ट्रेन गुजर गयी, उसी गति से लौटकर
उन्हीं उन्हीं आवाजों में थिर हो गया स्थिर हो गया
छोटा स्टेशन, क्षणों में और थोड़ी सरक गयी है रात.

तालीमार

वहाँ एक चुप, उत्सव मना रहा था
बैठे हुए लोगों के चेहरों पर
जड़े हुए ताले थे
जिनकी चाबियाँ,
शहर के प्रसिद्ध तहखाने में
एक सेफ डिपोजिट वाल्ट में
बंद थीं
जहाँ रात होते ही हाथों में हंटर देकर बिजलियाँ
दौड़ा दी जातीं

अब
जब वे बोलना चाह रहे होते, ताले का
बोध, उन्हें डपट देता
और सोचना छीन लेता
थप्पड़-रसीदी के बाद
और चाबियाँ मुस्कुराहट से शुरू होकर
खिलखिलाहट में नाचते हुए लोटपोट हो जाती

सामने खड़े
भीतर के सन्नाटे वह खौफनाक
चुप आता
लोहे के बूट मारता हुआ
वे डर जाते

और चेहरों में फिट किये टेपरिकॉर्डर बजाने
लग जाते,
चीजें आर्केस्ट्रा हो जातीं लड़कियाँ गातीं
लड़के छेड़खानी करते.
बूढ़े पके बालों के बारे में बातें करने जुट जाते
जागते रहो, कहकर खुद सो जाते.
भय
कुंडली बाँधकर होकर भीतर की ओर मुड़ने लग जाता.
वहाँ से, वापसी के बाद
अपने-अपने घरों के दरवाजों पर खड़े होने के बाद
काल-बेल दाबते या चाबियाँ घुमाते
अंगूठे में खाई बन जाती
वे घुसते वक्त महसूस करते
एक
धूर्त गहराई.
स्विच दबाते ही
पंखे के तीनों हथियार
आँखों के द्वारा
अपने को
ठेल देते
दिमाग में
फिर होता रहता
एक रक्तपात
रक्तपात
रक्तपात.
वे
दोनों हथेलियाँ जुड़ाकर, झरता हुआ रक्त
पीने लगते
फिर अपने विरुद्ध एक जाँच कमेटी बिठाते
एक साफ-सुथरे नतीजे पर पहुँचते
नतीजों को अखबार से भापते.
इस पीठ-थपथपाई और आँख-मार नीयत के साथ
वे बहुमत के बजते ढोल के लिए स्वीकृत हो जाते

जहाँ
वही खौफनाक चुप[illegible]
एक उत्सव मना रहा होता.
उत्सव में
सार्वजनिक नहर से
सबका खून
वहाँ पहुँचता होता

आँगन पर
छत

□

दरवाजों और खिड़कियों को
दीवारों में
बदला
जा रहा है

आँगन पर
छत,
लाई जा रही है

और
देखते देखते
आसमान
आँखों के आगे से
लिया जा रहा है.

दस्तावेज

इतिहास,
अगर ठीक ढंग से लिखा गया
तो
यही लिखा जायेगा.

सब अकेले थे
और अपने आप को
सुविधाओं से घेरे थे.

वे लोग
राजनीति का व्यापार करते थे
और हम लोग
साहित्य का.
और एक दूसरे से ज्यादा
कमीने थे, हलकट थे.

अगर वे लोग
अपनी हथेलियों में थूकते
तो हम लोग
चाटते
कभी कभी आपस में बांट लेते
इतिहास,

अगर ठीक से लिखा गया तो
यही लिखा और लिखा जायेगा.

ये वे लोग हैं

ये वे लोग हैं, जो जुल्म करनेवालों के साथ हैं
ये वे लोग हैं, जो जान लेनेवालों के साथ हैं
ये वे लोग हैं, जो अखबारो में, दूरदर्शन में, और आकाशवाणी में हैं
मंच पर हैं, सभाओं में हैं
कुत्तों की तरह दुम
हिलाते हैं और वामपन्थी भी बनते हैं

ये वे लोग हैं, जो रोटी के नाम पर स्वतंत्रता
छीननेवालों की पैरवी करते हैं
ये वे लोग हैं जो भारतीय जनता को मूढ कहकर
सत्ताधारियों के साथ लगे हुए हैं
बाप रे बाप !
जो भी इनका चेहरा देख लेता है, उसे
एक ऐसा पाप लग जाता है कि छुडाये नही छूटता

ये वे लोग हैं, जो सत्ता से कहते हैं, कि जुल्म ढाने का काम
हमें सौंपो
जल्लाद बनने के हमें पैसे दो.

दोस्तो !
यहाँ किसी को शर्म नहो
ये वे लोग हैं, जो अपनी माँ को वेश्या कहने में भी
नही हिचकिचाते.

ये ये लोग हैं, जो सच बोलनेवालों के लिए
गिरफ़्तारियाँ लाते हैं
क्या ये लोग बुद्धिजीवी हैं
या कि रंडीखाने के दलाल ?

ये लोग, बंदूक तानकर खड़े हो जानेवालों के साथ हैं
और निहत्थे आदमी को हिंसक कहते हैं

कभी, ऊँची एड़ियों के जूते पहनकर
तो कभी, कुर्सी पर खड़े,
क्या ये बौने लोग
जानवरों से भी कम कद के नहीं हैं ?

यह क्या हुआ ?

□

सम्बन्धों में
एक एक
सम्बन्ध में
जहाँ प्रेम को
खड़े पग रहना था,
शोषण
खड़ा
हुआ,
यह कैसा जीवन-दर्शन जिया
हम लोगों ने.

जबकि
शोषण के विरुद्ध तो
पहले से
लड़ाई तय थी

तय थी न ?

सुबह और शाम

[दो कविताएं]

सुबह

रात !
मनुष्य द्वारा बदशक्ल कर दी गयी इस पृथ्वी को
दूर से नमस्कार, करके गयी
यह खबर बादे-सबा लेकर आ गई थी
पंछियों ने गाकर उत्सव मनाया.

सुबह उतरी
पहले
लम्बी लम्बी
गर्दनवाले
मकान पर,
फिर वृक्षों
पर.
अन्त में,
छोटे-छोटे
घरों पर.

घर !
खिड़कियों की तरफ से खुलने लगे
फिर दरवाजों की ओर मुड़ गये.
चाली के नल पर, लोग जाने लगे.

दादा जी,
सबसे पहले नहाकर निकले
इतने मे सरकारी दूध की बोतलें घर में घुसी—
लेटरबाक्स में
गर्दन डालकर
अखबार कूदा घर में.
और नौकर
जैसे ही घर में घुसा.
घरवाले टपाटप उठे, दातुन के लिए
बहुओं और बेटियों ने रेडियो ट्यून किया
तो भजन
सब कहकर भागे और समाचार आने लगे

अब
सुबह हटाई जा रही, फिर हटा दी गयी.
इसके बाद,
तेज हुई धूप ने,
घर में
जहाँ भी आना-जाना सम्भव था,
और अगर
कोई वर्जित
क्षेत्र था
तो वहाँ भी,
नया अध्यादेश निकालकर
कब्जा
पा लिया था.

शाम
□
सड़कें!
सब
खडी
हुईं
पाँवों में आकर.

हमलावर

एक त्रास से दूसरे त्रास में दौड़ दौड़कर, पहले पाँवों पर
फिर उछलकर कंधों पर हमला करती हैं यातनाएँ

एक धुआँ और एक गंध, सुलगती चीजों की, मुझे घेरकर
चलती रहती हैं साथ-साथ रोज, एक छत सरकती रहती है
जरा जरा नीचे. और एड़ियाँ और पंजे घिसता हुआ भर जाता हूँ क्रोध से.

सुबह उठते ही मरे हुये चूहे की याद, सरकती है धूप में
और बासी दूध की तरह, फट जाती हैं इच्छाएँ और इच्छाएँ.

दिन भर एक पीला साँप, मेरे चारों ओर डसता हुआ चलता रहता है.
बिल्कुल ठीक से होती घटनाएँ, उलटने के लिए.
और मैं, उस जहर के बारे में सोचता हुआ लौटता हूँ घर.

सुविधा के बटन टांकते हुए

भय,
एक स्थापना है
जो साहस के विरुद्ध
बार-बार की जाती है.
उसकी जंजीरों में
जकड़े हुए, कैदी हैं हम.
स्वतंत्रता की बातें बनाते हुए.

तो, इसी तरह सजा मिलती है
कायरता को.
हर जगह दबते हुए, पीछे हटते हुए,
अपने लहू का उबाल पीते हुए,
अपने ईमान को
हर जगह कत्ल करते हुए.

ढेर-सी तारीखें आ गिरती हैं
शरीर में पड़ती दरारों में,
और एक बीतते हुए मौसम से
दूसरे मौसम का पता पूछते हुए
हम, कितने दयनीय हो जाते हैं
दयनीयता
कद
बढ़ाती
जाती है
और हम कदहीन हो जाते हैं.

कागज की पीठ पर
बैठकर
उड़ते हुए
शब्द आ जाते हैं
उन लोगों के,
जिन्होंने
जीवन को भरपूर जिया
जंजीरों को भी संगीत दिया

और हमने
कमीनों की तरह,
उसे, अपने-अपने कामों में
जी लिया.

हर जगह
दबते हुए,
पीछे हटते हुए,
अपने लहू का उबाल
पीते हुए.
— अपने ईमान का
हर जगह
गला
काटते हुए.

हम कहीं भी पाये जा
सकते हैं
दरजी की तरह
जल्दी-जल्दी
सच के होंठ सीते हुए
और तुरपे हुए काजों पर
सुविधा के बटन
टाँकते हुए.

सुविधा के बटन टांकते हुए

भय,
एक स्थापना है
जो साहस के विरुद्ध
बार-बार की जाती है.
उसकी जंजीरों में
जकड़े हुए, कैदी हैं हम.
स्वतंत्रता की बातें बनाते हुए.

सो, इसी तरह सजा मिलती है
कायरता को.
हर जगह दबते हुए, पीछे हटते हुए,
अपने लहू का उबाल पीते हुए,
अपने ईमान को
हर जगह कत्ल करते हुए.

ढेर-सी तारीखें आ गिरती हैं
शरीर में पड़ती दरारों में,
और एक बीतते हुए मौसम से
दूसरे मौसम का पता पूछते हुए
हम, कितने दयनीय हो जाते हैं
दयनीयता
कद
बढ़ाती
जाती है
और हम कदहीन हो जाते हैं.

कागज की पीठ पर
बैठकर
उड़ते हुए
शब्द आ जाते हैं
उन लोगों के,
जिन्होंने
जीवन को भरपूर जिया
जंजीरों को भी संगीत दिया

और हमने
कमीनों की तरह,
उसे, अपने-अपने कामों में
जी लिया.

हर जगह
दबते हुए,
पीछे हटते हुए,
अपने लहू का उबाल
पीते हुए.
--अपने ईमान का
हर जगह
गला
काटते हुए.

हम कहीं भी पाये जा
सकते हैं
दरजी की तरह
जल्दी-जल्दी
सच के होंठ सीते हुए
और तुरपे हुए काजों पर
सुविधा के बटन
टाँकते हुए.

पेड़ ही पेड़ दूर दूर तक हड्डियों के

पूरी जली सिगरेट की राख-सी
पीली, बोदी और टूटी हुई शामें
और रोज उनका सिलसिला....
कहाँ था आराम ?
सभी इन्तजार खोटे थे
कोई आनेवाला नहीं था.

चलनेवाले भी इतने कमनसीब थे
कि रास्ते
आहिस्ता आहिस्ता
चिपक गये पाँवों से.
और फुटपाथ
लगातार ढोते रहे
चेहरों के जंगल ही जंगल.

एक जोड़ी जूते,
जो हमने अपने पाँवों के लिए खरीदे थे
बहुतेरे चेहरे पीटते चले गये

ऐसा नहीं
कि कुछ भी नहीं हुआ
मगर लोग
घबरा गये.

निकल जाओ सड़े हुए दृश्य से

[इस कविता का मैं, अपने समय की जटिलताओं से घबराकर आधे रास्ते से तुम बन जाता हूं]

पी गया
एक के बाद एक और बोतलें चकित रहीं
वर्षों तक

एक ही अंधेरे की उजली शक्ल
घूमता रहा
विषकन्या के साथ
एक ही बिस्तर पर सोता रहा
एक के बाद एक रात.

फिर दिन भर कलम से स्याही अपने ऊपर फेंकता रहा
कोई नहीं था आसपास
अकेला होता गया
नये सम्बन्धों के लालच में
हर तरह से घूमता रहा
फिर जूझता रहा
किन्तु नकली थे प्रश्न
धीरे धीरे सब हो गये निरुत्तर

कोई बहस नहीं थी, कोई तर्क नहीं था
न मैं था
न तुम

और गाँधी की लंगोटी से, अपनी शर्म छिपाते-छिपाते
भूखा देश
नंगा हो गया, सारी दुनिया के सामने.

अब तुम एक काम करो
यह टाइपराइटर अपने सर पर दे मारो
अक्षरों की हत्या कर दो
इधर से भी
उधर से भी
अपराधों से जो खुशी होती है, हासिल करो.
तुम उलटकर देखो
मुहावरे
क्या हैं ? उनके नीचे
रास्ते कहाँ हैं ?
और कहाँ है
सुरंग ?

या
धँसाये रहो अपने दोनों हाथों को
जमीन में
फिर देख लेना
एक पेड़ तुम्हारी पीठ पर
जरूर
उग आयेगा
और
तुम खाद बन जाओगे
धीरे धीरे दफन हो जाओगे.
भागो
इस जगह से
ताक पर
रख दो
अपना भविष्य,
और निकल जाओ सड़े हुए दृश्य से.

तर्क
□
एक ऊँट-यात्रा, रेगिस्तान की ओर.

अपने लिए दो कविताएं

(१) पेड़ कथा

पतझर का आना, और पत्तियों का वृक्ष से बिछुड़-बिछुड़ जाना
भगाकर ले जाती हवा को दौड़ दौड़ कर पकड़ नहीं पाना
खुद अपने पैरों में कीले ठोक ठोक कर खड़े खड़े देखते रहना
एक किश्त में जीना
दूसरी किश्त में मर मर जाना
यह था पेड़ कथा में अपने रह रह कर आजमाना

(२) पहाड़ के पीछे

अपने को आग लगाना, फिर फूंक मार मार कर बुझाना
किसी पहाड़ के पीछे घाटी में कूद जाना या समुद्र में डूब डूब जाना
इसे कहते है हरेक दिन का खत्म हो जाना
दिनों की आत्महत्या के इस लम्बे सिलसिले को सूर्यास्त कहकर
फिर अपने को बचा लेना, दूसरे सूर्योदय के लिये.

लिफ्ट से उतरते हुए

तेज़ी से सडक पर दौड़ते आते हुए एक धक्के के नीचे
जोड़—बाकी
करते
हुए
मेरे तमाम दिन-रात

पीछा करता हुआ सभ्यता की हड्डियों का खटपटिया संसार
और बाद में,
चुपके से
मेरे चारों ओर लिपटकर बंद हो जाते बिना दरवाजेवाले घर

एक लिफ्ट से
उतरते हुए
लोग
सुरंगों में,
सुरंगों के मुड़े हुए मुँह लम्बी-चौड़ी खोदी हुई खाई में.
अब दिखता है
भयावह खुलते हुए एक मार्ग से
लुढ़ककर, आती हुई चट्टानें.
अन्त में आग की बरसात

बाहर-बंद, आदमी बंद. सचाई के सिये हुए होठ. और खुलकर
चीजों के पीछे दौड़ लगा-लगा कर लोहे के डंडे से खोपडी फोडता
हुआ
पुलिस-तंत्र

नये खुले बाजारों में
बिकाई शुरू होने के इन्तजार में
सुरंगवादियों के चेहरों के पिछवाड़े लगातार
भागम-भाग....
आँख फाड़कर देखा गया
बहुत-कुछ अजीब हुआ.
तमाम लोग
एक लिफ्ट से
पहुँचा दिये गये क्रांतियों के शहरों में

अब दोनों ओर लाइन लगाये हुए हैं दर्शक
चाबी मारकर दौड़ाई जा रही है क्रान्ति.
हिलाती हैं हाथ,
और गिरते हैं
अभिवादन.

समय यथा-स्थिति में

□

क्या
वह
दिनों में, रातों में
समय
नहीं
रहा ?

जो
बदल
देता

चुनाव का घोषणा-पत्र

हमे वोट दो, संविधान के अनुसार चुनो, और अपनी छाती पर बैठ जाने दो
तुम्हारी छाती पर बैठ जाना और बैठकर जमे रहना, हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है
जोर से सांस लो, और छोड़ो ताकि तुम्हारे जिंदा रहने का अहसास हमें जिंदा रख सके

वोट पर, हम कोई चोट नही सह सकते, तुम्हारे वोट लिये बिना रह नही सकते.
वोट न देना, गोलियों से बिंधना है

डरो, हमसे डरो, भीतर तक डरो, और चुपचाप बिल्कुल चुपचाप मतदान करो.

इतना ही नही, हमारी लोकतान्त्रिक तानाशाही और हमारी वाह-वाही मे मरो
अपनी स्वतन्त्रता की बाजी लगाओ, फिर जैसे चाहो अपनी रक्षा करो.

आलोचक और कुत्ते ही कुत्ते

मूल्यों से खुजलाये कुत्ते
पत्थरों की तेज मार से
अपनी दाहिनी टाँग तुड़वाकर
एक तरक्की पसन्द आलोचक के घर में घुस गये,
उस ऊँचे आलोचक के कई यारों ने
उन्हें जीभ से चाटा, इलाज करवाया
लेकिन कुत्ते
चौपाये साबित नहीं हो सके
सो पट्टे उतार लिए गये
और उन्हें म्युनिसिपैल्टी की गाड़ी को सौंपकर
जहर दिलवाकर उनकी हत्या करवा दी गयी
यह कथा दस बारह साल पुरानी है.

अब कुत्तो की नयी नस्ल आयी देखकर
आलोचक और उसके यार फिर ललचाये
चार छह पालतू कुत्तों की खुजली को
नये मूल्यों के इंजेक्शन देकर उन्हें फिर
मनुष्य की स्वतंत्रता के विरुद्ध
भौंकने और अवसर पाते ही काटने के लिए
छोड़ा गया है आदमियों की बस्ती में.
ताकि प्रतिमान साबित हो सकें
मनुष्य से बड़े.
देखें
ये कुत्ते कहाँ तक काम आते हैं
और आलोचक मतलब सधने पर या बिगड़ने पर
उनकी कैसे हत्या करवाते हैं.

हथेलियों में आग

हथेलियों पर जलाकर आग, मैंने अपना मुँह पोंछा है
पिछले दिनों में.

वे कहते हैं
मुझे शरमिन्दा होना चाहिये
लेकिन
मैं जंगली और जिद्दी दोनों था
वे
पूरे बन्दोबस्त के साथ
मुझे ले जाना चाहते थे
लेकिन मैं,
धुंध और धुंए के जंगल की ओर भागती ट्रेन से,
कूद पड़ा
पत्थरों पर.

मैंने आत्महत्या नहीं की, जैसा कि तुमने अखबारों में पढ़ा है.
यह झूठ, व्यवस्था ने गढ़ा है
मेरे दुश्मन
इसे दुर्घटना कहते हैं
और कुछ मूर्ख
इसे सच मान कर
शोकसभा में
शामिल हो गये हैं.

तथाकथित अहिंसकों से

बुद्ध हो कि महावीर हो, वे तुम्हारी तरह मनुष्य के निवाय सब कुछ नहीं थे
वे मनुष्य को, किसी भी तरह की हथकड़ियां नही पहनाते थे
वे हत्यारों और पापियों को और ज्यादा प्रेम करने वाले लोग थे
मानवीयता
उनकी जेब में मुट्ठी भर रहम नहीं था. जिसे वे तुम्हारी तरह बांटने का
दावा करते रहते.
वे साहस से भरे हुए लोग थे जो निर्भय होकर गलकट्टों की बस्ती में रहते थे

यहां

□

हरेक पाप है छुपकर किया हुआ. गजब ये पुण्य का, खुलकर बिका हुआ.

स्वाधीनता ? अड़तीसवें साल में

सैंतीस साल बीत गये
देश को,
अच्छी तरह बरबाद किया
पामाल किया
और करेंगे आगे भी.
देश
क्या समझता था अपने आपको ?

देश को आज्ञा दी जाती है
कि जैसा हम कहें
वैसा
भेष, बदल बदल कर रहे.
जैसे जैसे
हम चाहें,
उस क्रम से
बरबाद होता चला जाये,
अधिक से अधिक समय में,
बरबाद होना ही
उसके लिए
काफी हद तक सुखी होना है.

विरोधियो !
तुम्हें, देश,

हमने
खाने को दिया था.
और तुम भी देश को,
आपस में
एक दूसरे से अधिक
खाना चाहते थे
मगर लड़ें, झगड़ें, मरें
हम क्या करें ?

और देश
हमारी टेबुल पर
तुम्हें ही रख जाना पड़ा.

देश, बीमार है.
ऑपरेशन टेबुल पर है.
और हम लोग लग गये हैं
बराबर,
अपने काम में.

हम सैंतीस साल से
देश को बरबाद कर रहे हैं
अब कल से
अड़तीसवें साल में
प्रवेश कर रहे हैं.

घर

□

मेरे घर के बाहर

उनका
पहरा
है.

यह घर
किसका है ?

परिवर्तन जड़ता की ओर

□

गाते हुए,
चीखें
गहरी
और
तेज
हो
गयी

और मैं
बहरा.

मित्रों
की
बधाइयाँ
और
ठहाके....

फिर
कुर्सियाँ,
दो पँजों पर
खड़े
कंगारुओं-सी
होती हुई.

वक्त गुजर रहा है,
एक क्रूर
लय से
नाचता
हुआ.

और
सम्बन्धों की
दुष्टता से.

हरेक
दृश्य
पथरा
रहा है

यानी
एक कब्र
मेरे चारों
ओर
कद
बढ़ा रही है
और
मैं
लाश
होता जा
रहा हूँ.

आपातकाल में चुप

छह सालों से
                    जब क्रान्ति की बातें तेज़ थी, तुम्हारे मुँह में
तब मैंने कहा था
                    नपुंसकता आ रही है जीने में
और यह बात, मैंने कोई प्रतिष्ठा के साथ नहीं कही थी.
अपनी फजीहत करवायी थी
                    और जब अपने में भी कम ताक़त पायी थी, तो हिजड़ों की सहायता
मेरे काम आयी थी (और कविता प्रदर्शनी का उद्‌घाटन हुआ उनके हाथों से)

तुम्हारे ढंग देखे थे
लक्षण देखे थे. और मैंने कहा था कविता आत्मप्रचार है
दूसरों को ठगने का ज़रिया है.   जैसे विज्ञापन है.   तुम नहीं माने थे
क्योंकि तुम सार्थकता बेचते रहते थे
मैंने यह कहा था और लिखकर भी दिया था :
मैं डरा हुआ आदमी हूँ और मेरी कविता डरे हुए आदमी की कविता है.

मैंने तो राज्य से यह छूट भी माँगी थी कि बहादुरो को जैसे राशन देते हैं आप
डरे हुए आदमी को आत्महत्या करने का परवाना दिया जाय.
दोस्त, मुझे दुःख है
तुम लोगों के साथ यह क्या हो गया ?
अब न किसी के पास बंदूक की नली है, न वही पत्थर मारने की खलबली है.
अरे बहादुरो !
तुम्हारी बोलने की
उम्र तो अब आयी है. मौन से मौन में यह यात्रा क्या है ? अपने को याद करना....
तुम क्या चीज हो. तुम्हारी साख न आम आदमी में है, न ऊँचे तबके में;
तुम बीच के आदमी हो.

मैं फिर कहता हूँ,

वही वही बात फिर कहता हूँ अब तो मान लो. तुम भड़ुवे हो, जैसे मैं हूँ ...

३०.जून १९७०

डर

□

डर
गुफाकाल की आदत

छूट

बच नहीं पाओगे, दब के मर जाओगे, जल्दी से बंद हो जाते
दरवाज़ों के
बीच.
मैले होते ही उतारकर, धो दिये जाओगे
रस्सियों पर सुखा दिये जाओगे.
फिर मेज और गर्म लोहे के बीच सुला दिये जाओगे...
घड़े की तरह
एक दिन
गिर
जाओगे. टुकड़े-टुकड़े हो जाओगे
जिसके सर पर रक्खे हुए थे
उससे ही बिछुड़ जाओगे.

व्यवस्था से निर्धारित हैं रास्ते, मोड़ और मील के पत्थर
अपने पैरों को तोड़ने
और कहाँ जाओगे ?
घाट पर, बँधी हुई नाव हो
हिलो-डुलो ठीक है
लेकिन, अपनी मर्ज़ी से
यात्रा पर निकल नहीं पाओगे
वैसे यहाँ घमंड करने को पूरी छूट है.

काले घर

दीवारों, खिड़कियों और दरवाजों
के सायों को
हथेलियों में
एक चीटा,
मसल दिये जाने से भयभीत
दूर पहाड़ियों के पास
लाल जीभवाले श्मशानों में,
हर क्षण,
एक के बाद एक
अग्नि-परीक्षा.

अपने ही पेट में घुसे हुए
करोड़ों
हाथों की नैतिकता
एक दबाव डालती है
उजाले के भ्रम का.

सारी बरसातें लौट गयी हैं
बादलों के अपने-अपने जुलूसों के साथ

अब मेजों और कुर्सियों को
पास सरकाओ
और एक दूसरे को बताओ
बहम को

कहाँ से
आगे बढ़ाया जाय....समस्याओं के
काले
घरों में
तो उन्होने कहा,
खामोश !
अपने भीतर के पहाड़ को
अन्दर के शहर की ओर
मत लुढ़काओ,
चाय की एक
प्याली, भीतर
फेंकते हुए,
इस बनते हुए प्रजातंत्र में
स्वतंत्र हो जाओ.

उस कथा का अन्त

□

अब शिकार को

शिकारी
की दया
पर

छोड़ दिया
गया है

देवदत्त
और
सिद्धार्थ की
उस कथा का अन्त

पलट
दिया
गया है.

मतदाता का अधिकार

चूहे-बिल्ली के अपराध खेल में
मुझ पर, और मेरे साथियों
पर बिल्ली होने का अपराध है.
जबकि मै, उनके जबड़ो में अधमरा पड़ा हूं

स्थापित स्वार्थो को मोटी और नंगी जांघों के बीच
चलते हुए बौने
दायित्व की खाल ओढ़े हुए खूनी,

उस दिन
हिजड़ो से डर गये, और अपने नकली स्वाभिमान पर मर गये—
वह स्वाभिमान, जो सुविधा की मोटी खाल मे उपजता है
वे गिनते है अपनी हथेलियों के बाल, और खुश होते हैं.
और देखते ही ब्लेड
चीखते है दायित्व
लेकिन दूसरे का

नया खून, देने का लोभ देकर
वे एक सुई भोंकते है लम्बी बेहोशी की
और सिरिंज मे
निकालते जाते है खून
और शोषण के विरुद्ध करते है मतदान.

चूहे-बिल्ली के इस अपराध खेल मे मतदान,
जहाँ, ईमानदारियाँ रेप की जाती है.

-वाड़
की
तरह
उगती है
हार-जीत,
जो पाँच वर्षों तक
हाथों में बाँस लिये पीटती रहती है
इस भीड़ को, या उस भीड़ को, या दो भीड़ों से मिलाकर
तैयार की गयी तीसरी भीड़ को
या
भीड़ में
खड़े
भूखे, नंगे, असहाय देश को.
मैं
इन तमाम भीड़ों में, बार-बार पिटवाया गया
नागरिक हूँ
जिसे
एक निर्णय के साथ
अनागरिकता की ओर मुड़ना पड़ा है.
मैं
यहाँ
सरेआम
चीखता हूँ
मेरा मतदानिया अधिकार वापस ले लो

सलाह



वे कहे,
वही टूथपेस्ट
इस्तेमाल कीजिये.

यह बुश्शर्ट पहन लो

देख लो ! आंख खोलकर देख लो
मेरी बुश्शर्ट में
ये जो लाल रंग के धब्बे हैं
ये मुझे क्रान्तिकारी घोषित करते हैं

नोट
करो,
क्रान्ति, यहीं से शुरू होती है.
और ये जो सफेद रंग के गोले हैं
मुझे ही, शान्ति स्थापना के लिए
महत्वपूर्ण सिद्ध करते हैं.
और यह जो बाकी जगह काला रंग है
मुझसे ही आग्रह करता है
पहले के सामने
दूसरे की भूमिका
निभाने का

और मास्टर !
यह जो तुम्हारे कमीज़ का रंग है
मेरी बुश्शर्ट के एक कोने में पड़ा हुआ
पाया जाता है.

वर्षों बिताकर
चीजों से,
तुम्हें घेरने के षड्यंत्र में सफलता के बाद
देखा है मैंने कि,
तुम निहायत डरे हुए आदमी हो.
और अब तुम
खुद मर रहे हो
अपनी ही चीजों की सुविधा से,
आकर्षण से,
सम्मोहन मंत्र से.

५

पंक्ति में खड़े होने की सुविधा
कहती हैं, इसे.
चीजों के पीछे दौड़ लगाओ
और जोर जोर से दौड़ो
गिर पड़ो
वहाँ जाकर
जहाँ मरते वक्त पानी माँगो तो,

देने वाला, कोई भी न बचा हो.
सुनो !
एक और वरण की स्वतंत्रता बाकी है
यह बुश्शर्ट पहन लो
यह बुश्शर्ट क्रान्तिकारी है
और इसे पहनने की आजादी है.

तख्ती



जहाँ पे न्याय की तख्ती
लगी है
वहीं पे
न्याय की हत्या हुई है

सुइयों के नीचे

मैं, कहाँ से बात करूँ
या चुप-रहूँ
दोनों स्थितियाँ, ठहरी हुई हैं
मुझे,
समाप्त हो गये हैं
आत्मप्रलापों पर,
या
बाहरी विवशताओं पर.

मैं उदास हूँ
मरी हुई असम्बोधित तालियाँ
बजाते हुए
जिनमें
बैठ जाते हैं
तमाम चुप
और
हवा पिट जाती है

गहरे दुख के साथ
नोट
कीजिए
कि तोड मरोडकर रखी गयी
बालिग आजादी को,
हथेली से

उतारकर
रख आया हूँ
चूहों द्वारा कुतर खाने के लिए
एक ऊब में से अपने को बाहर
फेंकने के लिए

फँस गयी
औरतों की तरह
पेट रह जाने के बाद
अब क्या किया जा सकता है !

दरअसल
दराजों में
फाइलों की तरह बन्द करके
रखा है
हमारा भविष्य,
इस वक्त,
कहीं पत्ता तक नहीं हिलता
हवाएँ
किसकी मुट्ठी में
बंद और बंद !

भीतर से सन्नाटा
घर से घबराया
और बाहर
अजनबीपन
सहता हुआ
सिगरेट के धुंए-सा
खड़ा हूँ
एक खीज को सहलाता हुआ
सिलाई की मशीनें
जिनके हाथों में है
उन्होंने

कपड़े
सोना बन्द कर दिया है
और आदमी हैं,
लगातार
उठती-गिरती
गिरती-उठती
सुइयों के बीच.

हवा, आंधी, पेड़

जब हवा
आंधी बन आये
और पेड़ उखड़कर गिरने के बजाय
आंधी
कह दे
यहां-वहां, जाकर
खड़े होने लगें
और फिर उसे
नयी जमीन की तलाश कहने लगें
तो
और की तो, मैं नही जानता
मुझे तो, हंसी आयेगी, और आयेगी ही.
मैं तो इस पूरे दृश्य में
उस पेड़ को ही नमस्कार करूंगा.
जिसने उखड़ जाना पसन्द किया, बजाय समझौते के.
और साहस तथा
स्वेच्छा से,
वरण किया मृत्यु का
और उसे,
एक आन्तरिक उत्सव में
बदल दिया.

किताबी लोग

वे लोग, जिन्हें तुम खोजने निकले थे, नहीं मिले.
भले ही किताबों में अक्सर लिखे हुए मिले.
धक्के !
संचालित कर रहे हैं समय की सुइयों को
और धूप,
फूंक मारकर, निगल रही है चीजें

एक शवयात्रा !
जुलूसों को आगे बढ़ा रही है
और लोगों की उम्मीदों के पाँव, घिस गये हैं.

एक विराट शोक सभा
तालियाँ
बजा
रही है
जय-जयकारों को, कन्धों पर बिठाकर, समाचार-पत्रों के दफ्तरों में
छोड, छोड़ कर
लौट रही है.

खामोशी !
सबके चेहरे पर भाव चुकी है
भले ही चेहरे बदलने की निरन्तरता रही हो.

नर्क में
जो लोग यात्रा कर आये हैं, कहते हैं
'पाखण्ड, सच के पीछे छिपे मिले और पेट के खड्डे में
बैठे हुए लोग मिले'.

सज़ा

सज़ा देनेवाले उदार हो गये, जल्लाद नहीं रहे,
देखो ! हथकड़ियाँ
बेड़ियाँ पहनाकर ले जाया जा रहा हूँ
अपराध यह है कि व्यस्त नहीं रहा उनकी सीढ़ियाँ बनाने में,

शब्दों की उंगलियों से निकलती है आग
शब्द हैं मेरे कड़वे, संगीत-हीन, और गाने के नशे में
धुत हैं लोग, इसलिए मुँह बाँधकर, तहखाने में उतारा जा रहा हूँ

सज़ा का दूसरा हिस्सा यह है कि इसके बाद ठूँस दिया जाऊँगा पागलों की जेल में
जाने से पहले, इस सदी की इस तरह प्रशंसा करता हूँ
कि शस्त्र मारता हुआ आदमी है
और रची हुई दुर्घटनाएँ हैं.

पराये
निर्णय

यही मेरी स्वतंत्रता रही
कि आँखों के आड़े
कान किये
खड़ा रहा.
जहाँ तहाँ
औंधी पड़ी
हुई चीजें
सीधी करने से
थरथराता रहा.
चीख से लेकर खामोशी तक
फैली हुई भाषा में
जब मुझे
दोनों हाथ उठा-उठा कर
खंडहर पुकार रहे थे
मैं, चोर दरवाजे से घुसकर
घर का मालिक बनकर
एक बेशर्मी के साथ
तीसरी जगह
निकलता रहा.
अपने होते हुए भी, निर्णय
दूसरों के थे
मैं, जाल में फँसा हुआ
प्रशिक्षण में
चूहों की आदतें
सीखकर,
खुद को
कुतर-कुतर कर
छोड़ देता रहा
लपलपाती जीभों के बीच,
यह बल प्रयोग
रोज करता रहा.
स्वतंत्रता
क्या चीज होती है
कभी महसूस नहीं
कर सका.

दाव लगाने का
साहस ही नहीं था
इसलिए,
बहस में
जगह बना-बनाकर
सार्थकता के सवाल
उठाता रहा.

क्योंकि प्रश्न पूछना
विदेशों से सीखकर
लौटा था.

वैसे कुछ भी नहीं है
पास,
न दौलत
न खूबसूरत औरतें
न कार, न बंगला
न कुत्ता, न बगीचा,
लेकिन
ओगली में घर देने से
कँपकँपाता रहा
सिर्फ इसलिए कि कभी
इनके मिलने की
सम्भावना न मर जाय.

दोस्तो!

कोने में खड़े रहने का
एक निकम्मा अकेलापन
रचा मैंने
बजाय
साफ
होने के
मार खाती हुई भीड़ के
सच कहता हूँ कि
पराये निर्णयों के बीच
अपने द्वारा चुने हुए
अंधेरे का
मोह भी कैसा है
कि जेब में
दियासलाई
रखने से
डरता
रहा.

विभाजन

□

मुझको
हरेक जगह
दूसरा
बन
जाना
पड़ा
एक ही घर को
कई कमरों में
बँट जाना
पड़ा

प्रार्थना

अब,
लगता है, कि तुम्हें
पैसों की अधिकता
जल्दी-जल्दी
विवेक से बाहर
ले जायेगी....

अहंकार
मद चढ़ायेगा तुम्हें;
तुम्हारी यह अवस्था
साथ के प्रत्येक व्यक्ति को
अपने नियंत्रण मे लाने की
जबर्दस्त कोशिश करेगी....

जो ऊष्मा
ऊष्मा-भरे सम्बन्धों से
तुम्हें अलग-थलग कर देगी....
फिर
दम्भ के अलावा तुम्हें कुछ भी
अच्छा नही लगेगा

फोन पर
तुम्हारी आवाज
तुम्हें
फुला-फुला कर बोलेगी

तुम
सामान्य सत्यों को
और मानवीय मूल्यों को भी
दौलत के पागलपन में
भूल जाओगे.
किसी कुत्ते की तरह
चलती हुई बैलगाड़ी के नीचे,
नीचे
चलोगे....
यात्रा को अपने नाम लिख दोगे
और उसे बार अपने जैसों में पढ़ोगे—
यह सब भूलकर कि,
गाड़ीवान का घर आयेगा,
बैल
विश्राम करेंगे
और दूसरे दिन
फिर हल या गाड़ी में जुत जायेंगे....
मैं तो फिर
यही प्रार्थना कर सकता हूं,
तुम्हारी सफलता
अहंकार-शून्य हो
और उन मानवीय मूल्यों
के लिए हो
जो तुम्हारी विवेक की
रक्षा करे,
सतत रक्षा करे....

शोकसभा



हरेक बार
तेरे साथ
मरा
रोज मेरी शोकसभा

दोनों का

उपयोग

□

जो, खबर की तरह, फैले हैं चारों ओर
उन्होंने यह फैलाव जाँचने के पूर्व ही
व्यवस्था के शर्तनामे पर हस्ताक्षर कर दिये हैं
समर्थन में
या विरोध में

क्योंकि दोनों का चरित्र
अन्ततोगत्वा
एक जैसा हो जाता है, या कहो, है
यह सब हमने अनुभव से जाना है
आँखों देखा है
किताबों का इससे
क्या
लेना-देना है ?

जो,
व्यवस्था का इस्तेमाल तराजू की तरह करना जानते हैं
वे लोग, दोनों [illegible] उपयोग जानते हैं.

पलड़े
चाहे कितने ही गुर्रायें एक दूसरे पर
लेकिन जब कम तौल की शिकायत बढ़ जाती है
तो लोग,
पलड़े बदल देते हैं
तराजू की व्यवस्था तो
वही की वही रहती है
वही की वही है.

लेकिन पलड़ों के बाहर
अगर तुम कोई सृजन करने लगते हो
तो दोनों पलड़े
तुम्हें गाली देने लग जाते हैं.
इधर पलड़े का हिस्सा बने लोग
कहने लग
जाते हैं,

तुम उधर के पलड़े का हिस्सा बन गये हो

और उधर के पलडे का अंग बने लोग,
भौंक उठते हैं
तुम इधर वालों के दलाल हो.

खैर !
इससे तो
कुत्तों की उपस्थिति का ही
बोध होता है.
ऐसे में कोई तो बतलाये
मनुष्य कहाँ चले गये ?
यहाँ से,
इस बस्ती से,
घर-बार छोड़कर.

लेकिन ऐसों के बीच में ही
अकेला चलना सामर्थ्य है
आत्म-निर्भरता है
मनुष्य होने का गौरव है, विवेक है.

डरे,
इस पलडे का या उस पलड़े का, हिस्सा बने लोग क्या जानें ?
अभी तो उन्होंने

शरीर ही मनुष्य का पाया है
मनुष्य की आत्मा पाने में
अभी बहुत दूरी और देरी है.

चलो
हम उनके
अन्धकार से निकलने की प्रतीक्षा करें,
क्योंकि वे भी तो हमारे ही भाई हैं.

शौर्य

□

जब तुम डर नहीं रहे थे
वे लोग डरने लगे थे

सोचना
बार-बार

सोचना !
कभी-कभी सोचना !
खामोशी किस शक्ल में, मिल रही है बाजार में,
घरबार में,
दरबार में,
सम्बन्धों के तार-तार में.

रस्सियाँ !
पैरों के नीचे से दौड़ रही हैं घटनायें गिराने को
शोषण-सूत्र जमाने को
समय एक जगह रोक देने को
कील
बनाकर
एक जगह ठोक देने को
कहाँ है ?

एक देश
दूसरे देश के साथ,
एक राज्य, दूसरे राज्य के साथ,
एक हाथ, दूसरे हाथ के साथ,
और तुम
मेरे साथ.

आदमी के पीछे आदमी.   मीलों लम्बी क़तार
जिस्म और कपड़े सभी
तार-तार

सोचना !
कभी कभी सोचना !

खोज

□

मैं नही मिलूँगा
कभी नही मिलूँगा
मुझे मत ढूँढ़ना
इन लोगों में/   या उन लोगों मे
जिन्होंने खूँटों से बँधने   के लिये
लिखा.

क्योंकि मैं किसी भी प्रकार के सृजनबाधक
फ़ॅचलेदरों की बस्ती में
कभी नही रहा.

साज़िश

गवाह
नहीं,
तो तैयार कर लिए गये,
कर लिए जाते हैं
सज़ा !
घर में भी दी जाती है
और बाहर भी.

इस तरह
कहीं भी नहीं छोड़ा गया
मनुष्य को
न इस व्यवस्था की कहो
न उस व्यवस्था की कहो
हरेक व्यवस्था में
मनुष्य का रक्त
पिया गया है.
और सत्ता को तो
'यह रक्त पिलाना'
नागरिकों के कर्तव्य में
शामिल कर लिया गया है
यहाँ तक कि
हाथों में पत्थर देकर
फूलों को भी

जगह-जगह
खड़ा
कर
दिया है.

हाय, मेरे छोटे-छोटे सच तक, मारे गये
जैसे मेरे बच्चे मारे गये हों.
जिनके नीचे,
उनके मुँह
लगे हुए थे,
फिर सत्य-विजय की कहानियाँ
कही गयी,
और मेरी उम्र को स्याही
बना बनाकर
लिखी गयीं.

एक दिन
मुझे गहन अंधकार में
रखा गया
दूसरे दिन
तेज रोशनी से अंधा
किया गया
और हँसने को तो
भीतर से दाग दिया गया.

वे लोग आते
व्यवस्था से ही आते
यहाँ तक कि
दोस्त बनकर भी आते हैं
सिर्फ एक जगह मेरी है
जहाँ देह से भी
अलग रहा जा
सकता है,

ये लोग, कभी ये लोग;
ये लोग, कभी ये लोग;
बनकर आते हैं
एक धनुष बन जाता है
दूसरा तीर बन जाता
तीसरा जब धनुष चलाता है
तब मैं उसके सामने सजाकर
खड़ा कर दिया जाता
यह शिकार घर
घर में भी किया जाता है
और बाहर भी. क्योंकि उनकी उपस्थिति चप्पे चप्पे पर है

फिर इस हत्याकांड को
मुक्ति, विकास, प्रगति या कल्याण का
नाम दिया जाता है.

कितना योजनाबद्ध है
सब कुछ
सब कुछ ही.

सजा
घर में भी दी जाती है
और बाहर भी.
और गवाह
तैयार
कर
लिये
जाते
हैं.

चरित्रहीनता

□

आइनें
पथभ्रष्ट हुये

सब लौट गये
अपने अपने अँधेरों में.

इस गुस्से को क्या करें

बहुत गुस्सा आ रहा है मुझे
इस गुस्से [redacted] क्या किया जाय ?

रोज पाखंड की दीवार, एक मीटर [redacted] जाती है
आदमी को जीवित दफनाकर
अपनी नींव में
रोज एक के बाद एक
दरिंदे
शब्दों की झाड़ियों से बाहर निकल,
मेरे गले में, फाँसी के फँदे कसते हुए फरमाते हैं :
"चुपचाप
इस खाली कागज पर दस्तखत कर लो.

हथियार तो हमने
तुम तक पहुँचने ही नहीं दिये
बेतरतीब पत्थर खुद पर मारकर
आत्महत्या कर लो

या
अपनी जान हमें दे दो. हम उसे पीसकर मिट्टी कर देंगे
फिर न तुम्हें भय होगा और हम निर्भय होंगे.

उल्लू के पट्ठे,
अपने को बुद्धिमान मत समझ. सारे बुद्धिमान लोग दंडित हैं
काले पानी के जेलखानों में
या साइबेरिया के यातना-शिविरों में.

काले पानी के जेलखानों में
या यातना-शिविरों में
बार बार अपने घूमते और घूमनेवाले चेहरे को देख.

सोच,
समझ!

हम तुम्हें वरण की स्वतंत्रता देते हैं.
'जाते हैं आज, कल वापस आयेंगे'.

वरण की स्वतंत्रता के इस आग्रह पर
मुझे और अधिक गुस्सा आ रहा है, इस गुस्से का क्या किया जाय ?

कंधों में धँसा हुआ शहर

मेरी टाँगें निकाल कर मुझे बैसाखियाँ दे दी गयी हैं
और कंधों में खोद-खोद कर, उनमें एक शहर रख दिया गया है.

गलियों के रास्ते और राजमार्ग, यातायात के शोरगुल के साथ बहते हैं मेरे खून के रेले में
दूरियाँ ऐड़ियों से जाँघों तक रस्से-सी कसकर लिपटी हैं.
हाथ खींच-खींच कर लम्बे [illegible] दिये गये हैं.
कमरे छोटे-छोटे और बौने

हाथ ऊपर उठाते ही कमरे दीवारों से टकराकर छत से चिपक जाते हैं

एक झटके साथ आ जाते हैं युद्ध में युद्ध ही युद्ध
और मेरी पराजय में पराजय ही पराजय गुणाकार होती हुई....
फिर युद्ध-विराम.

युद्ध-विराम शुरू होते ही, चुपके से कमर और खोपड़ी पर एक तेज प्रहार किया जाता है.
और दूसरा क्षण वह होता है जब मुँह में चिथड़े ठूसकर पट्टी कस दी जाती है.

फिर शहर मेरे चेहरे पर चहलकदमी करता हुआ पहरा देता है.

क्योंकि मैं, आजीवन नजरबन्द होता हूँ उसकी जिम्मेदारियों का.

मैं उसके तमाम मुखों की रचना में रोज रोज,

कान पकड़ पकड़ कर कूदता रहता हूँ अपने भीतर पड़ी दरारों में.

शहर जिसकी नींव में कन्धों में पड़ी है, मैं हर बार झटक देना चाहता हूँ

लेकिन

वह एक छलांग लगाकर मेरे कन्धों को और अधिक खोदता हुआ मुझ में धँस जाता है

अवसाद

□

उदास
उदास
है
मन

पुस्तकों पर जमी धूल-सा

युग असत्य का

एक झूठ युग मे, असत्य से लदे फदे हम रहते है
जिसका घोपणा-पत्र है सत्यमेव जयते

हरेक जगह से, सत्य का पूरा शोपण करने के लिये
शोपण तक जल्दी से जल्दी पहुँचने के लिए
हम एक राजमार्ग ले आये हैं
इसीलिए पल पल हरेक पल
असुविधाजनक सत्यो को अपनी ही एक मरी हुई सांस
की तरह छोडते जाते हैं और प्रत्येक झूठ में से
आराम से गुजर जाते है
सत्यमेव जयते की 'नेमप्लेट', अपनी ललाट पर लगाये हुये

असत्य के इस औद्योगिक युग मे, सत्यमेव जयते ही
एक ऐसा सुनियोजित कारखाना है
जिसमे
असत्यों का उत्पादन, इतना अधिक होता है
कि मुझ तक, आप तक, सब तक, पहुँच जाता है

चुन लेना है मार्ग

चुन लेना है मार्ग
नहीं तो
जीवन
साइकिल के पहिये की तरह
घूमता घूमता
चुक जायेगा एक दिन
अपनी गति में

वस्तुओं को लाने, उठाने, सजाने,
और अन्त में
उनकी शवयात्राओं में शामिल
हो जाने से
तुम्हारा अकेलापन कम तो नहीं होता !

चुन लेना है मार्ग
नहीं तो
समय के हाथ में
अपनी गर्दन देने के सिवाय
कुछ भी नहीं बचेगा एक दिन !

देखो
जरा ध्यान से देखो
तुम्हारी गर्दन पर
तुम्हारी हत्या के लिए

तुम्हारा और उनका एक
मिला जुला हाथ पड़ा है बरसों बरसों से.
इसी हाथ को
अपना अस्तित्व भेजकर
ये दूसरों की दी हुई बैसाखियाँ फेंककर
अपने पैरों से
रास्ता बनाते हुए चलो

नहीं तो
पैरों की ये बैसाखियाँ
हाथ मिला-मिलाकर एक होती जायेंगी
फिर मोटी हो हो कर
एक हो जायेंगी.

और तुम बिना पेड़ बने ही
ठूँठ बन जाओगे एक दिन.

समय, घड़ी में



मैं अनन्त था

नहीं,
बल्कि अनन्ताम्श था
लेकिन

जब कैद हुआ
मुझे भी
घड़ी में
चलना पड़ा
रुक रुक कर चलना पड़ा

दीये बुझाने के बाद भी

[चंदनबाला, जिसके हाथों तीर्थंकर महावीर ने पाँच महीने पच्चीस दिनों के उपवास के बाद भोजन ग्रहण किया चंदन बाला की माँ, जिसने, पीछा करते हुए क्रूर सैनिकों के बलात्कार से बचने के लिए अपनी जीभ चबाचबाकर प्राण दे दिये थे.]

दीये,
बुझा दिये गये हैं
हाथ को हाथ न सूझे
ऐसा
अँधेरा है.

मिट्टी के दीयों में
जलने के लिए
जो तेल होता है
अब वह कहाँ है ?

शहर में यह जो रोशनी है
वह तो, पावर हाउस की है.

हमारे पास जो
रोशनी थी
अब वह कहाँ है ?
कहाँ रख दी है ?

घर में, यह क्या उठा लाये ?
साँपों के डर ने.
घेर लिया है हम सबको.

कायर और असहाय होने का
यह कैसा समय है ?
दाँतों के बीच
जीभ
दबाकर
मर जाने की इच्छा
होती है, चंदनबाला की माँ की तरह.

ठीक कहते हो !
हम सब
मनुष्य होना
खोते जा रहे हैं
धीरे-धीरे
पत्थर, पत्थर, पत्थर
हो रहे हैं
स्वतंत्रता, खो रहे हैं.
लेकिन, मनुष्य का
पत्थर में पलट जाना,
नियति है
ऐसा मैं नहीं मानता.

कैसा भी वक्त हो
कैसा भी शासन हो
कैसा भी जुल्म हो
जान देने का
आखिरी निर्णय
मनुष्य के हाथ में है.

जंगल



कोई भी जंगल
उतना डरावना नहीं है,
जितना
हम डर रहे हैं.

अपने स्वभाव से खारिज हो जाने को देखने की कविता भी है क्योंकि अपने स्वभाव से खारिज हो जाना हरेक प्रकार हिंसा (विश्व युद्ध तक) और शोषण चक्रों तथा दूसरे को दी जानेवाली यातनाओं का जन्म होता है. यह दूसरे का भाव ही सबसे बड़ा यातना शिविर है और इस यातना-शिविर को, सभ्यता, प्रगति, विकास, दूसरे की भलाई, दल प्रतिबद्धता, न्याय, समता, लोकतंत्र, देशभक्ति, समाजवाद, धर्म या किसी विचारधारा के सुहाने नाम से खड़ा करना, मनुष्य का अपने प्रति ही नहीं इस सृष्टि के अन्य प्राणियों के प्रति भी इस शताब्दी का सबसे बड़ा अपराध है. जिसमें हम, आप और कुन्तलकुमार भी शामिल है. इस अपने ही किये अपराध और अत्याचार को कहना कवि के शब्दों में अपनी फजीहत करवाना है, अपने आप पर कोड़े बरसाना है. इतना कहने के बाद अब यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि वे न तो समर्थन के कवि हैं, न विरोध के, न पक्ष के कवि है, न प्रतिपक्ष के. जिसे इस संकलन की कविताओं से समझा जा सकता है उनका तो कहना है कि वे तो उन कविताओं के भी कवि नहीं है जो उन्होंने लिखी हैं क्योंकि कविता परिग्रह की चतुराई नहीं है बल्कि अपरिग्रह की सरलता और सहजता है.

यह नन्दकिशोर मित्तल ने कहा, लिखा और आपने पढ़ा.



पृथ्वीनाथ शास्त्री सोहन शर्मा
नंदकिशोर मित्तल चन्द्रकान्त बांदिवड़ेकर
विजयकुमार सुरेश जैन अक्षय जैन
देवेन्द्र जैन कल्पना सुन्दर और संसद.

आप सबके सहयोग का ऋण स्वीकार और आभार.